शिक्षा का संवैधानिक अधिकार

❑ राजाराम भादू

अन्ततः शिक्षा को मौलिक अधिकार का संवैधानिक दर्जा देने की प्रक्रिया आगे बढ़ी । भारतीय संसद के एक सदन, लोकसभा, ने 93 वें संविधान संशोधन के रूप में शिक्षा विधेयक को नवम्बर 2001 में पारित कर दिया । अब इसे संसद के दूसरे सदन, राज्यसभा, में पास होना है । असल में यह विधेयक संसद में पिछले चार साल से विचारार्थ पड़ा था । इस दौरान केन्द्र में सरकार भी बदल गई । संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 45 में 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए संविधान लागू होने की आगामी 10 सालों में निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान करने का स्पष्ट उल्लेख होने के बावजूद, सरकार ने 50 सालों तक इस ओर ध्यान नहीं दिया । यहां उल्लेखनीय है कि नीति निर्देशक सिद्धांतों में केवल यही धारा है जिसके साथ कालावधि (दस साल में) की वचनबद्धता जुड़ी है। 1993 में उन्नीकृष्णन बनाम आन्ध्रप्रदेश मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया था कि 14 वर्ष तक के हर बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने का मौलिक अधिकार है। इससे पूर्व 1990 में भारत ने ज्योमितेन में हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सन् 2000 तक 'सबके लिये शिक्षा' लक्ष्य पाने के संकल्प पर हस्ताक्षर किये । 1992 में भारत ने बाल-अधिकार चार्टर पर हस्ताक्षर किये ।

93 वें संविधान संशोधन विधेयक के लोकसभा में पारित होने के बाद से ही शिक्षा क्षेत्र से सम्बद्ध अनेक लोगों और बुद्धिजीवियों के एक समूह द्वारा इस विधेयक की आलोचना की जा रही है । कहा जा रहा है कि इस विधेयक के अनुसार सरकार केवल 6 से 14 वर्ष के बच्चों को ही निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगी । छह वर्ष से नीचे के बच्चों को यह अधिकार नहीं दिया गया है अर्थात बच्चे की आरंभिक देखभाल और शिक्षण (अर्ली चाइल्डहुड केयर एण्ड एज्यूकेशन - इसीसीई) की जिम्मदारी सरकार ने नहीं ली है । ऐसा कहने वाले लोग सर्वोच्च न्यायालय के 1993 के निर्णय की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि उसमें 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार माना गया है जिसमें छह साल से छोटे बच्चे भी शामिल हैं। ये लोग इस संदर्भ में बाल-अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर का भी उल्लेख करते हैं जिसमें भारत ने हस्ताक्षर किये हैं । लोगों ने इस पर भी एतराज जताया है कि बच्चों को प्राथमिक शिक्षा दिलाने की जिम्मेदारी विधेयक में अभिभावकों पर डाली गयी है। इसे अभिभावकों का संवैधानिक कर्तव्य माना गया है। कुछ लोग तो इस बावत यहां तक कहते हैं कि बच्चों को स्कूल न भेजने पर अभिभावकों को दण्डित भी किया जा सकता है । विधेयक में 'निःशुल्क शिक्षा' के अर्थ को स्पष्ट करने की मांग की गई है । यह भी मांग की गई है कि बच्चों का केवल शुल्क ही मुक्त न हो बल्कि उन्हें यूनीफार्म, पुस्तकें, कॉपी-पेंसिलें और पौष्टिक भोजन भी मुहैया कराया जाये।

अब यह देखें कि 93 वां संविधान संशोधन विधेयक वास्तव में कहता क्या है ? 93 वें संविधान संशोधन के अनुसार मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत धारा 21 के बाद धारा 21 ए जोड़ी गई है जिसमें कहा गया है, 'दी स्टेट शैल प्रोवाइड फ्री एण्ड कम्पलसरी एज्यूकेशन टू ऑल चिल्ड्रन ऑफ दी एज ऑफ सिक्स टू फोर्टीन ईयर्स इन सच मैनर एज दी स्टेट मे, बाई लॉ, डेटरमिन'।

93 वें संशोधन के अनुसार अब यह धारा पूर्व की धारा 45 (नीति निर्देशक सिद्धांतों के अन्तर्गत) का स्थान लेगी, 'दी स्टेट शैल एन्डेवर टू प्रोवाइड अर्ली चाइल्ड हुड केयर एण्ड एज्युकेशन फोर ऑल चिल्ड्रन अनटिल दे कम्पलीट दी एज ऑफ सिक्स ईयर्स।' इसी संशोधन में संविधान की धारा 51 ए में वर्णित संवैधानिक कर्तव्यों के अन्तर्गत 51 ए (के) के तहत यह जोड़ा गया है, ' हू इज ए पेरेन्ट ओर गार्जियन टू प्रोवाइड अपोर्च्युनिटीज फोर एज्यूकेशन टू हिज चाइल्ड ओर, एज दी केस मे बी, वार्ड बिटवीन दी एज ऑफ सिक्स एंड फोर्टीन ईयर्स।'

इस संशोधन की रोशनी में देखें तो छह वर्ष तक के बच्चों की देखभाल और शिक्षा ने मौलिक अधिकार का स्थान भले नहीं पाया हो लेकिन संविधान में ऐसी जगह पा ली है, जहां से सरकार की रीति-नीति निर्णीत होती रही है । 93 वें संविधान संशोधन पर बोलते हुए केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री ने बताया था कि इसी विधेयक के पूर्व प्रारूप यानी 83 वें संशोधन में यह प्रावधान नहीं था । वास्तव में भारत की सामाजिक संरचना और जमीनी हालातों के मद्देनजर शिशु-शिक्षा की अभी तक एक सार्वजनीन आवश्यकता नहीं है। यह सही है कि समाज के किन्ही तबकों के लिए शिशु संरक्षण और स्कूल-पूर्व शिक्षण अति आवश्यक है, लेकिन दूसरी ओर समाज में ऐसे परिवारों की तादाद भी अच्छी-खासी है जहां बच्चे सहज-स्वाभाविक स्थितियों में भली-भांति पलते-बढ़ते हैं ।

देखना तो यह चाहिए कि 93 वें संविधान संशोधन में आलोचना के लिए असल बिन्दु कौन-से हैं ? प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने वाली धारा 21 ए का यह अंश देखें, 'इन सच मैनर एज दी स्टेट मे, बाई लॉ, डेटरमिन' । यह कहकर सरकार ने शिक्षा की रीति-नीति तय करने के समस्त सूत्र अपने हाथ में ले लिए हैं। 93 वें संविधान संशोधन पर बहस के दौरान इस धारा में 'एक्वीटेबिल एण्ड क्वालिटी एज्यूकेशन' (समान और गुणावत्तायुक्त शिक्षा) पद-बंध जोड़ने के सुझाव दिये गये थे । लेकिन ऐसा नहीं हो पाया । अपने मौजूदा रूप में इस धारा का यही अर्थ रह जाता है कि जिस तरह की शिक्षा सरकार उपलब्ध करवा दे । शिक्षा के स्वरूप और अन्तर्वस्तु का कोई वस्तुपरक रूप यहां परिभाषित नहीं है। लेकिन इसे लेकर कहीं जोरदार आवाज नहीं उठायी जा रही ।

'नि:शुल्क' शिक्षा की परिभाषा को लेकर उठ रही मांग सही है। 'नि: शुल्क' का यह अर्थ करना कि सरकार बच्चे की शिक्षा के लिए शिक्षक, स्कूल जिसमें सभी आवश्यक संसाधन हों तथा शिक्षण-सामग्री नि:शुल्क उपलब्ध कराये, यहां तक तो ठीक है । लेकिन सरकार से बच्चों की पोशाक (यूनिफॉर्म) और पौष्टिक भोजन (मिड डे मील) की मांग उचित नहीं है । जहां तक यूनीफॉर्म का सवाल है, इसका तो स्कूल में कोई औचित्य ही नहीं है । बच्चे अपने अभिभावकों द्वारा बनवाये सामान्य कपड़े पहनकर स्कूल आ सकते हैं । स्कूल में बच्चों को दिये जाने वाले भोजन को लेकर इसके घटिया होने की शिकायतें आम हैं । अगर बच्चे भूख के दबाव में स्कूल आते हैं तो उनकी सीखने की प्रक्रिया गौण हो जाती है । दूसरे यह बच्चों के आत्म सम्मान के खिलाफ है । उनके लिए गरिमापूर्ण स्थिति तो यही है कि उन्हें पौष्टिक भोजन घर पर ही उपलब्ध हो ।

इसी धारा में जोड़े गये 'अनिवार्य' शब्द की कोई प्रासंगिकता नहीं है । शिक्षा किसी पर थोपी जाने वाली चीज नहीं है। बच्चा स्वेच्छा से स्कूल जाये, शिक्षक मन से पढ़ाये, तभी शैक्षिक प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से घटित हो सकती है। यदि यह 'अनिवार्यता' राज्य के लिए है तो ये तो शिक्षा के मौलिक अधिकार होते ही उसमें अन्तर्निहित हो जाती है । बच्चे के लिए 'अनिवार्यता' नैसर्गिक नहीं हो सकती । धारा 51 ए (के) के रूप मे उल्लिखित होने के बावजूद 'बच्चों को

स्कूल भेजना' अभिभावक के लिए 'अनिवार्यता' नहीं हो सकता । ये संवैधानिक कर्तव्य है जिसकी अनुपालना न करना दण्डनीय कृत्य नहीं हैं ।

यह भी विचारणीय मसला है कि संविधान में वर्णित उदात्त कर्तव्यों का तब तक क्या अर्थ है, जब तक कि कोई आम नागरिक इन कर्तव्यों के निहितार्थ और महत्ता को समझते हुए इन्हें आत्मसात नहीं करता । शिक्षा के संदर्भ में ही बात करें तो किसी अभिभावक से कर्तव्य की अवहेलना करने पर शिकायत करना तभी उचित होगा, जबकि वह शिक्षा की महत्ता और उपयोगिता से परिचित हो, उसके बच्चे के लिए गुणवत्तापूर्ण सार्थक शिक्षा उपलब्ध हो और बच्चे को स्कूल के दौरान घरेलू काम से मुक्त करने की आर्थिक सामर्थ्य उसमें हो । कहना न होगा अभिभावक इसमें भी समर्थ होना चाहिए कि वह बच्चे को पौष्टिक भोजन और उपयुक्त पोशाक मुहैय्या करा सके । अतएव संवैधानिक नागरिक कर्तव्यों का मसला राज्य के नागरिकों के प्रति कर्तव्यों से जुड़ा है।

प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार मानकर उसके देशव्यापी क्रियान्वयन के लिए 9,800 करोड़ रुपये की प्रति वर्ष आवश्यकता होगी । प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीनीकरण के प्रयासों की पिछले एक-डेढ़ दशक चली मशक्कत से शिक्षा परिदृश्य में कोई मूलभूत बदलाव नहीं आ पाया है । यूनीसेफ की ताजा रिपोर्ट कहती है कि भारत में पहली कक्षा में जाने वाले हर 100 बच्चों में से केवल 52 बच्चे ही पांचवी कक्षा तक जा पाते हें । राज्यों में राजस्थान का ही उदाहरण लें तो यहां 11 लाख बच्चे आज भी स्कूल का मुंह नहीं देख पा रहे हैं । प्राथमिक शिक्षा में द्वितीय श्रेणी के 3855 एवं तृतीय श्रेणी के 27 हजार 979 शिक्षक पद रिक्त हैं । (राजस्थान विधान सभा में शिक्षामंत्री का भाषण, 15 अप्रैल, 2002) । यहां सरकारी स्कूलों के अतिरिक्त 11 हजार 500 राजीव गांधी स्वर्णजयंती पाठशालाएं खोली जा चुकी हैं । इन एकल शिक्षकीय पाठशालाओं में सरकारी आंकडों के हिसाब से 8 लाख बच्चों का नामांकन था। यहां उल्लेखनीय है कि राजीव गांधी पाठशालाओं को लेकर लोगों की शिकायतें आम हैं । इनमें लगाये गये अर्ध-शिक्षकों (पैराटीचर्स) को न्यूनतम मजदूरी के बराबर भी वेतन नहीं मिलता । इस वेतन को 'मानदेय' कहकर इन्हें बहुत दिन छला नहीं जा सकता और देर-सवेर इसका असर इन शालाओं की गुणवत्ता पर ही पड़ना है । इन शालाओं और राजकीय स्कूलों की स्थिति का अंदाज तो राजस्थान विधान सभा में शिक्षामंत्री द्वारा इस तथ्य को स्वीकारने (15 अप्रैल, 2002) से ही हो जाता है कि 50 फीसदी बच्चे दूसरी कक्षा में पढ़ाई छोड़ देते हैं ।

ये एकाधिक बार साबित हो चुका है कि ये दूसरे दर्जे की प्रणालियां बच्चों को शिक्षा से नियमित जोड़े रखने में समर्थ साबित नहीं हुई हैं। जबकि मसला विपन्न बच्चों को ही शिक्षा के अधिकार का है, सम्पन्न बच्चे तो पहले ही शिक्षा पा रहे हैं । ऐसी स्थिति में विधेयक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि दलित, आदिवासी और वंचित तबकों के बच्चे सार्थक और स्तरीय शिक्षा पा सकें। उक्त विधेयक अभी राज्यसभा में जाना है जो देश के बौद्धिक वर्ग का भी प्रतिनिधित्व करती है, उन्हें अपने संशोधनों में सभी बच्चों के लिए बेहतर शिक्षा की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिये। ◆